पहलवान और न्याय के लिए उनका संघर्ष

प्रेम सिंह

'इंडियन एक्सप्रेस' (23 मई 2023) में मुखपृष्ठ पर प्रथम स्टोरी के रूप में प्रकाशित अपने आलेख 'बहुत-सी लड़कियों की तरह सालों-साल मुझे भी चुप-चाप इस शख्स (बृजभूषण शरण सिंह) के हाथों (यौन-उत्पीड़न) सहना पड़ा' में विनेश फोगाट ने एक गौरतलब बात कही है: "अब कोई डर नहीं बचा था। केवल इतना ही डर बाकी था कि हमें कुश्ती छोड़नी पड़े। हमारा भरोसा है कि इस खेल के हमारे पास अभी पांच साल हैं। लेकिन ये सब प्रतिरोध करने के बाद कौन जाने भविष्य के गर्भ में हमारे लिए क्या है! हम यह भी जानती हैं कि हमारे जीवन को खतरा हो सकता है। क्योंकि हमने बृजभूषण शरण सिंह से ही नहीं, सत्ता की दूसरी ताकतों से भी झगड़ा मोल ले लिया है। लेकिन मैं मौत से नहीं डरती।'' न्याय के लिए संघर्ष के रास्ते पर महिला पहलवान अंतत: डर और लालच की मनोवृत्तियों से मुक्ति पा लेती हैं। इस अर्थ में उनके संघर्ष पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की जरूरत है।

आलेख में फोगाट बताती हैं कि भारतीय कुश्ती संघ के अध्यक्ष बृजभूषण शरण सिंह द्वारा लंबे समय से किए जा रहे यौन-उत्पीड़न के खिलाफ उन्होंने विभिन्न सरकारी/प्रशासनिक संस्थाओं - भारतीय कुश्ती संघ (डब्ल्यूएफआई), खेल मंत्रालय, भारतीय ओलंपिक संघ (आईओए), भारतीय खेल प्राधिकरण (एसएआई), निगरानी समिति (ओसी), दिल्ली पुलिस आदि - के आगे गुहार लगाई। लेकिन किसी ने उनकी शिकायत को गंभीरता से लेते हुए उचित कार्रवाई नहीं की। न्याय पाने के लिए उन्हें मजबूरन सामाजिक मैदान में उतर कर संघर्ष करने का निर्णय लेना पड़ा। साक्षी मलिक, बजरंग पुनिया और यौन-उत्पीड़न का शिकार हुईं कई अन्य पहलवानों ने इस निर्णय के साथ एकजुटता दिखाई। सुप्रीम कोर्ट ने दिल्ली पुलिस को एफआईआर दर्ज करने का आदेश दिया। आलेख से स्पष्ट होता है कि पहलवानों को सीधे संघर्ष के निर्णय पर पहुंचने से पहले लंबे आत्म-संघर्ष से गुजरना पड़ा है।

आज के अधिनायकवादी/कट्टरतवादी राजनीतिक-सामाजिक वातावरण में डर और लालच पर जीत हासिल कर लेना एक बड़ी उपलब्धि मानी जाएगी। शुरू से ही सत्ता-प्रतिष्ठान और ट्रोल सेना तरह-तरह से महिला पहलवानों का मनोबल तोड़ने की कोशिशों में लगे हैं। दिल्ली पुलिस का रवैया उनके प्रति दमनकारी रहा है। शायद यह उनके आत्म-संघर्ष से उपजी ताकत का परिणाम है कि वे सभी अंतत: डर और लालच पर जीत हासिल कर पाए। यहां तक कि उन्होंने प्राणों तक के डर से मुक्ति पा ली। लालच करियर का भी होता है - जिसे प्रत्येक खिलाड़ी कड़ी

लगन और मशक्कत से अर्जित करता है। जैसा कि आलेख में फोगाट ने कहा है कि उन्होंने अपने आगे के करियर की परवाह छोड़ दी है। जाहिर है, अन्य पहलवानों ने भी।

ध्यान कर सकते हैं कि उपनिवेशवादी शासन के दौरान भारतीय मानस में डर और लालच की जुड़वां मनोवृत्तियों ने गहरी पैठ बना ली थी। इस विशिष्ट परिघटना के चलते देश में करीब तीन शताब्दियों तक औपनिवेशिक पराधीनता की स्थिति बनी रही। भारत का स्वतंत्रता संग्राम डर और लालच की मनोवृत्तियों को काट कर भारतीय मानस में निर्भयता और अपरिग्रह/संतोष की प्रस्थापना का संघर्ष भी था। गांधी ने पूरी निष्ठा के साथ इस लक्ष्य को स्वतंत्रता संग्राम की सांसों में पिरोने की कोशिश की थी। हालांकि, उनका नेतृत्व मानने वाले ज्यादातर नेताओं/बुद्धिजीवियों की निष्ठा गांधी के प्रयास के साथ या तो आधी-अधूरी थी, या बिल्कुल नहीं थी।

आजादी मिलने के साथ ही हमने निर्भयता और संतोष का पाठ पढ़ाने की हिमाकत करने वाले गांधी की दैहिक और वैचारिक हत्या कर दी। आजादी के मात्र चार दशक बाद ही देश के दरवाजे नवसाम्राज्यवाद की अगवानी में लिए खोल दिए गए। डर और लालच की जुड़वां मनोवृत्तियां शायद उपनिवेशवादी दौर से भी ज्यादा तेजी और गहराई से भारतीय मानस में पैठती चली गई हैं। केंद्र की सत्ता पर काबिज और उसे लंबे समय तक बनाए रखने की नीयत से परिचालित आरएसएस/भाजपा का वर्तमान संस्करण लोगों के भीतर सत्ता का डर बैठाने और उन्हें लालची बनाने में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। लेकिन भाजपेतर शासक-अभिजन (रूलिंग इलीट) भी अपने सत्ता-क्षेत्र (पावर डोमेन) में यही भूमिका निभाता है। एक न्यायपूर्ण व्यवस्था के लिए डर और लालच का फंदा काटना जरूरी है। दो-चार नागरिक भी ऐसा करते हैं, तो उसका स्वागत किया जाना चाहिए। महिला पहलवानों ने यह किया है।

न्याय करने वाली संस्थाओं और व्यक्तियों के अभी तक के रुख से यह विश्वास नहीं बनता कि बृजभूषण शरण सिंह की गिरफ़्तारी होगी और उन पर मुकद्दमा चलेगा। अलबत्ता, ज्यादा से ज्यादा वोट की राजनीति के तहत क्षति-नियंत्रण (डैमेज कंट्रोल) के लिए आगे-पीछे उनसे भारतीय कुश्ती संघ के अध्यक्ष पद से इस्तीफा देने को कहा जा सकता है। भाजपा के कुछ नेताओं की अपनी सरकार से मामले को लंबा चलने देने की इधर की गई शिकायत इसलिए नहीं है कि पहलवानों को न्याय मिले, बल्कि अपने राजनीतिक नफा-नुकसान की चिंता के चलते है। दरअसल, सरकार ने बृजभूषण शरण सिंह को अपने बचाव के लिए लंबा समय दिया, ताकि वे साक्ष्यों और गवाहों को अपने पक्ष में प्रभावित कर सकें। नाबालिग शिकायत-कर्ता अपना पहला बयान वापस लेकर नया बयान दर्ज कर चुकी है। इस तरह बृजभूषण शरण सिंह प्रोटेक्शन ऑफ

चिल्ड्रन अगेंस्ट सेक्सुअल ओफेंस एक्ट (2012) के दायरे से बाहर हो गए हैं। खेल मंत्री और पहलवानों के प्रतिनिधियों के बीच हुई 7 जून की बैठक की रिपोर्टिंग (जो खुद 'इंडियन एक्सप्रेस में आई है) में पहलवानों की मुख्य मांग - बृजभूषण शरण सिंह की अविलंब गिरफ़्तारी - का जिक्र भी नहीं आया है। फिलहाल पहलवानों के प्रतिनिधि संघर्ष को 15 जून तक स्थगित करने के लिए तैयार हो गए हैं।

जो भी हो, आइए मुद्दे की बात करें। न्याय करने वाली संस्थाओं में बैठे 'भले' लोग जब पहलवानों को नसीहत देते हैं कि बृजभूषण शरण सिंह उनके पिता जैसे हैं; वे पितृ-भाव से उन्हें स्पर्श करते हैं, तो संदेश यही होता है कि 'संस्कारी यौन-उत्पीड़क' शिकायत और सजा से परे होता है! वरना ये लोग अच्छी तरह जानते हैं कि बृजभूषण शरण सिंह 'पिता जैसी' शख्सियत के स्वामी होते तो महिला पहलवानों की तरफ से आरोप लगते ही अध्यक्ष पद से इस्तीफा दे चुके होते।

यही कहा जा सकता है कि पहलवानों को यौन-उत्पीड़न के खिलाफ न्याय पाने के अपने संघर्ष में निराश या हताश नहीं होना चाहिए। जल्दबाजी से भी काम नहीं लेना चाहिए। न्याय के संघर्ष के पथ पर वे खाली हाथ नहीं हैं। डर और लालच को जीत लेने की जो ताकत उन्होंने कमाई है, उसके चलते वे एक बड़ी भूमिका में आ गए हैं। अपनी इस स्थिति को उन्हें और मजबूत बनाना चाहिए। सुप्रीम कोर्ट के आदेश पर दिल्ली पुलिस द्वारा दर्ज की गई एफआईआर के जो ब्यौरे सामने आए हैं, उन्हें देख कर लगता है कि कुश्ती संघ के भीतर, और बाहर भी महिलाओं को बृजभूषण शरण सिंह के हाथों यौन-उत्पीड़न सहना पड़ा हो। सात महिला पहलवानों के सीधे संघर्ष को देख कर चुप रह जाने वाली ऐसी महिलाओं को न्याय मिलने की उम्मीद बंधी हो सकती है। जिस खेल बिरादरी से संघर्षरत पहलवानों ने सबसे पहले समर्थन की गुहार लगाई थी, हो सकता है चुप्पी के बावजूद उनके भीतर बैठा कायर कुछ न कुछ टूटा हो। जो नागरिक जंतर-मंतर पर उनके समर्थन में पहुंचे, हो सकता है वे निर्भयता और आत्म-प्रतिष्ठा की कीमत पर लालच का शिकार न होने का कुछ सबक लेकर लौटे हों। जो नागरिक, विशेषकर महिलाएं, घरों में अथवा कार्यस्थलों पर रहते हुए यह संघर्ष देख रही हैं, हो सकता है उन्हें कुछ हिम्मत हासिल हुई हो। जीवन की सार्थकता के लिए पहलवानों की यह कम बड़ी पूंजी नहीं है। उन्हें निराश होकर गंगा में अपने मेडल बहाने अथवा आमरण अनशन करने की जरूरत नहीं, बल्कि आगे के कर्तव्य निर्धारित करने की जरूरत है।

उसके लिए जरूरी होगा कि समर्थकों और सलाहकारों का पूरा सम्मान करते हुए वे पहले की तरह अपने फैसले खुद करें। यह बात उनके समर्थकों और सलाहकारों को भी समझनी चाहिए।

खास कर उन्हें जो अपनी सफलता के लिए पहलवानों को पीछे धकेल कर खुद आगे रहना चाहते हैं। देश में राजनीतिक विमर्श जिस निम्नतम धरातल पर पहुंच चुका है, उसके चलते पहलवानों के प्रतिरोध के पीछे राजनीतिक स्वार्थ-सिद्धि के आरोप स्वाभाविक हैं। खिलाड़ियों का चरित्र-हनन करने, उन पर कीचड़ उछालने, उनके संघर्ष को जातिवादी अथवा क्षेत्रवादी बाड़ों में कैद करने का काम भी फैसला होने तक चलते रहना है। कुछ भले पूर्व और वर्तमान खिलाड़ी उपदेश देते रहेंगे कि खेल और राजनीति को नहीं मिलाना चाहिए। पहलवानों को इस सब में उलझे बगैर देश के नागरिक और प्रतिष्ठित खिलाड़ी की पहचान के साथ अपना संघर्ष जारी रखना चाहिए। उसके लिए जंतर-मंतर का पता अनिवार्य नहीं है। उन्हें पूरा हौसला और ताकत मिले।

(*समाजवादी आंदोलन से जुड़े लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के पूर्व शिक्षक और भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला के पूर्व फेलो हैं*)